P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-IV*December-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पुराण में राजधर्म एवं राष्ट्रधर्म

पूजा द्विवेदी
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय
गोरखपुर यूनिर्सिटी,
गोरखपुर

सारांश

मानव समाज का इतिहास तभी समझा जा सकता है, जब उसकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध रुप से दी जाए। पुराण का आरम्भ 'सर्ग' 'सृष्टि' से और अन्त प्रतिसर्ग 'प्रलय' से होता है। इन दोनों बिन्दुओं के बीच में होने वाले विशाल कालखण्डो का राजाओं का तथा महत्व शाली राजवंशों का विवरण प्रस्तुत करना ही पुराण का 'पुरातत्व' है। कलिवंशीय होता है, जिसकी प्रमाणिकता आधुंनिक उपकरणों–शिलालेख ताम्रलेख, मुद्रा आदि से सिद्ध होती है। राजा परीक्षित से लेकर राजा पद्मानन्द तक को इतिहास पुराण के आधार पर ही निश्चित किया गया है।

मुख्य शब्द : पुराण, राजधर्म, राष्ट्रधर्म

प्रस्तावना

पुराणों ने प्रायः दो सहस्त्र वर्षो से भारतीय जन–जीवन को बहुत प्रभावित किया है, औपचारिक शिक्षा से वंचित जनता में पारम्परिक ज्ञान का वितरण किया है, उसे नैतिक दृष्टि से आदर्शोन्मुख बनाकर भारतीय राष्ट्र के लिए समर्पण'–भावना में निरत बनाया है तथा आस्तिकवाद की व्यवस्था में रखकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँध रखा है। पुराणों का धार्मिक, ऐतिहासिक शैक्षणिक, नैतिक आदि दृष्टिकोणों से अन्य किसी साहित्य की अपेक्षा अधिक महत्व है। सभी प्रदेशो मे रहने वाले भारतीयों को एक सांस्कृतिक सूत्र में पुराणों ने युगो से बाँध रखा है। राजनैतिक दृष्टि से एक शासन में निबद्ध न रहने वाला भारत सांस्कृतिक और धार्मिक एकबद्धता में अवस्थित है, यह पुराणों का ही श्रेष्ठतम योगदान है। पुराण क्षेत्रीयता को राष्ट्रीयता में संकीर्णता को उदारता में परिणत करते है।

उद्देश्य

पुराणों ने मनुष्य की क्रियाओं को धार्मिक रुप प्रदान करके उन्हे पाप और पुण्य के रुप में विभाजित किया है। पुराणों मे ही आदर्श समाज बनाने की व्यापक विधियाँ वर्णित है। ऐतिहासिक काल के राजवंशो का विवरण भी पुराणों मे प्रस्तुत है।इस शोध के माध्यम से पुराणों में उल्लिखित राजधर्म एवं राष्ट्रधर्म की महत्ता, प्रजा के लिए उसकी आवश्यकता एवं वर्तमान समय में उसकी भूमिका का उल्लेख है, जो आज की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जन मानस के लिए अनुकरणीय हैं।

पुराण का अर्थ

'पुराण' शब्द प्राचीन धार्मिक साहित्य के अर्थ में वैदिक युग में ही प्रचलित हैं। धर्म का अंग बनाकर प्राचीन कथाओ वंशावलियो इतिहास–भूगोल के तथ्यो एंव सामान्यतः ज्ञान–विज्ञान के सभी विषयो को पुराणो में काल क्रम में समाविष्ट कर दिया गया महाभारत के सामन 'पुराण' भी विकास शील साहित्य रहा है। जिसका अन्तिम सम्पादन व्यास ने किया था। अथर्ववेद के अनुसार पुराण का अविर्भाव ऋग, साम, यजुष छन्द के साथ ही हुआ था।

शतपथ ब्राम्हण में पुराण को वेद कहा गया हैं सम्भवतः वैदिक युग के प्राचीन आख्यानो का संकलन करने के लिए एक पृथक साहित्य भेद का जन्म हुआ जिसे पुराण कहा गया और इसका संकलन उसी समय आरम्भ हुआ जब विच्छिन्न वैदिक मंत्रो का संहिताकरण होने लगा हो। उपर्युक्त तथ्य इस मान्यता का समर्थन करते है।

छान्दोप्योनिषद (7/1/2) में इतिहास तथा पुराण को संयुक्त रूप से नारद ने 'पंचम वेद' कहा हैं। वृहदारष्टाकोपनिदू (2/4/10) में भी इतिहास पुराण को वेदों के समान परमात्मा के निःश्वास के रूप में निर्गत कहा गया है।इस प्रकार वेदों के समकक्ष पुराणों को प्राचीन वाड.मय में रखा गया।

इतिहास तथा पुराण को प्राचीन साहित्य में समान स्तर पर रखा गया है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त महाभारत में भी कहा गया है। अर्थात वेद के अर्थ का पल्लवन इतिहास और पुराण के द्वारा करना चाहिए। वस्तुतः वेदों के

क्लिष्ट कर्मकाण्ड को रोचक बनाने के लिए चार प्रकार के साहित्य अविर्भूत हुए–इतिहास, पुराण ,गाथा और नाराशंसी।

कालक्रम से संक्षेप की दृष्टि से केवल प्रथम दो अवशिष्ट रहे। वैदिक युग में 'इतिहास' का प्रयोग प्राचीन तथा शाश्वत व्यवस्था के अर्थ मे था जैसे अर्थ में था जैसे अर्थवेद के विराट ब्रम्ह, ज्येष्ठ ब्रम्ह, इन्द्र आदि के विषय एवं अर्थ में। पुराण का प्रयोग पुरावृत तथा तथा पुरातत्व से सम्बन्द्व सृष्टि, प्रलय, भूगोल, आकाशमण्डल आदि के विवरण के लिए किया जाता था। 'गाथा' के अन्तर्गत प्राचीन कथाएं निहित थी, वे नैतिक हो वास्तविक हो या काल्पनिक हो।

इन्द्रवृन्त की कथा (ऋगवेद 2/15)पुरूरूवा उर्वशी की कथा (ऋग्वेद 10/15) विश्वामित्र नदी संबाद में निहित कथा (ऋग्वेद 3/3) इत्यादि ऐसी ही कथाएं है।'नाराशंसी' के अन्तर्गत वीरो की प्रशंसा वीरगाथा वीरो का अभिनंदन आदि निहित था। जैसे ययाति नाहुष (ऋग्वेद 9/101/4–6)

नहुष मानव (ऋग्वेद 9/101/7–9)

परीक्षित (ऋग्वेद 20/127) इत्यादि।

आधुनिक युग में प्राप्त पुराण (अष्ठादश पुराण और उपपुराण) परवर्ती है वैदिक युगीन नही। इन पुराणो की दृष्टि से पुराण शब्द का निर्वचन कई प्रकार से किया गया है।

1. पुराणमाख्यान पुराणम्–प्राचीन आख्यानों को पुराण कहते हैं।
2. वायपुराण (1/203) के अनुसार (प्राचीन काल में जो सजीव घटनाएं थी उन्हे पुराण कहते हैं। (यस्मात्पुरा ध्यनाति)
3. सायण (ऐतरेय–ब्राम्हणभाष्य की भूमिका) के अनुसार संसार की उत्पति और विकासक्रम के बोधक साहित्य को पुराण कहते हैं–जगतः प्रागवस्थमनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणं।
4. पदमपुराण में कहा गया है–पुरार्थेषु आनयतीति पुराणम् अर्थात प्राचीन विषयो में जो श्रोता को ले जाता हैं वही पुराण हैं।
5. वायुपुराण (1/253) में कहा गया हैं–पुरा परम्परा वाक्तिपुराणं तेन वै स्मृतम।
6. मधुसुदन सरस्वती ने विश्वसृष्टि के इतिहास को पुराण कहा है।
7. यास्क ने निरूक्त में जो पुराण का निर्वचन दिया हैं वही अत्यधिक प्रचलित निर्वचन हैं– पुरा नवं भवति (निरूक्त 3/19)

प्राचीन काल में जो विषय नया रहा हो वही पुराण है। यास्क की कल्पना बहुत ही रोचक हैं। प्रमुख पुराणो तथा अमरकोष जैसे प्राचीन ग्रन्थो में पुराणो के लक्षण तथा विषयवस्तु के सम्बन्ध में यह श्लोक मिलता है। तद्नुसार पुराण ग्रन्थ में पांच विषयों का प्रतिपादन होता है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च
वंशानुचरितम चैर पुराणं पंचलक्षणम।

सर्ग–विश्व की सृष्टि की प्रक्रिया

प्रतिसर्ग–प्रलय तथा पुनःसृष्टि का वर्णन

वंश–देवताओ और ऋषियो के वंशो का वर्णन

मन्वन्तर–प्रतयेक मनु का काल और उस काल की प्रमुख घटनाओ का वर्णन एंव निरूपण।

वंशानुचरितम–सूर्यवंश और चन्द्रवंष मे उत्तपन्न राजाओ का जीवन चरित

यह लक्षण उस समय बना था जब इन विषयो से समन्वित पुराणो का रूप स्पष्ट हो चुका था। यह लक्षण उस समय बना था जब इन विषयो से समन्वित पुराणो का रूप स्पष्ट हो चुका था। किन्तु कालक्रम से पुराणो में अन्य अनेक विषयो का संकलन होने लगा और मूल पुराण लक्षण अभिभूत हो गया विष्णुपुराण एकमात्र ऐसा पुराण है जिसमें ये लक्षण घटित होते है।

अन्य पुराणो में ये पांच लक्षण आंशिक रूप से ही प्राप्त होते है। कुछ पुराण तो इन लक्षणो का स्पर्श भी नही करते वर्तमान पुराणो का स्वरूप दार्शनिक या ऐतिहासिक नही अपितु धार्मिक है। जिसके कारण विष्णु या शिव की भक्ति या उपासना को ही अधिकांश पुराण समर्पित है। तद्नुकुल विषयो का ही इनमें समावेश है। विभिन्न देवताओ की स्तुतियां पुण्य लाभ के लिए किये जाने वाले ब्रत उत्सव तथा उपवास तीर्थ आदि का विस्तृत वर्णन प्रायः सभी पुराणो में है।

अग्नि पुराण में ज्योतिष शरीर विज्ञान व्याकरण शस्त्रप्रयोग चिकित्सा साहित्यशास्त्र आदि विषयो का भी विवरण दिया गया है।

'वंशानुचरितम' के अन्तर्गत प्राचीन राजवंशो का विवरण भी कुछ पुराणो में (मत्स्य, वायु, ब्रम्हाण्ड, भविष्य, विष्णु, भागवत, तथा गरूण पुराण में मिलता है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश के प्रथम राजाओ से आरम्भ करके इन वंशो का वर्णन महाभारत के युद्व में भाग लेने राजाओ तक चलता है।

पुराणो को व्यास के द्वारा रचित माना गया हैं। और व्यास पाण्डवों के समकालिक माने गये हैं। इसलिए ये राजवंश वर्णन उस समय तक 'भूतकाल' में किये गये हैं। इसके बाद के कलियुग के राजाओ का वर्णन 'भविष्यपुराण' में किया गया है। कलियुग के राजाओं की सूचियों में शिशुनुमा नन्दमौर्य, शुंग, आन्ध्र तथा गुप्त वंशो के राजाओ की सूची प्राप्त होती है। ये वंश भारतीय इतिहास में प्रसिद्व हैं। इन सूचीयों में कुछ अंसगतियां अवश्य हैं किन्तु सामान्य रूप से इन्हे भारत के प्राचीन राजनीतिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है।स्मिथ ने कहा है कि मौर्य वंश (326 ई0पू0–185 ई0पू0) के विषय में विष्णुपुराण तथ आन्ध्र वंश के विषय में मत्स्य पुराण विश्वसनीय है।

वायुपुराण चन्द्रगुप्त प्रथम (320–330 ई0) के काल की राज्य व्यवस्था का वर्णन करता हैं। राजाओं की सूचीयों के अन्त में ये पुराण आभीर गर्दभ, शक, यवन, तुषार हूण आदि शूद्र तथा म्लेच्छ राजाओं की वंशावलियां देते हैं। जो पुर्वोक्त राजाओ के समय में थे। कलियुग के भावी पतन का भी वर्णन इन में मिलता है। इस प्रकार पाचवीं छठी शताब्दी ई0 तक का वर्णन कुछ पुराणों में भविष्यवाणी के रूप में है। यहां हम भविष्य पुराण को छोड़ दें जिसमें 16वी शताब्दी ई0 तक वर्णन जोडा गया है।

पुराणों ने प्रायः दो सहस्त्र वर्षो से भारतीय जन जीवन को बहुत प्रभावित किया हैं। औपचारिक शिक्षा से वंचित जनता में पारम्परिक ज्ञान का विवरण किया है। उसे नैतिक दृष्टि से आदर्शोन्मुख बनाकर भारतीय राष्ट्र के लिए समर्पण भावना में निरत बनाया है तथा आस्तिकवाद की व्यवस्था में रखकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बांध रखा है। पुराणों, धार्मिक ऐतिहासिक शैक्षणिक नैतिक आदि दृष्टियों से इतना महत्व हैं जितना किसी साहित्य प्रकार का नही हो सकता।

पुराणों में महाभारत युद्व के पूर्व के राजाओ की वंशावली तो श्रुति परम्परा के आधार पर दी गयी है। इसके बाद के राजाओ में परीक्षित से लेकर पदमनन्द का इतिहास भी ज्ञात अभिलेखों के आधार पर प्रस्तुत किया गया हैं। यह कालखण्ड भारतीय इतिहास के लिए अभी तक अज्ञात ही है।

पुराण का आरम्भ होता है सर्ग (सृष्टि) से और अन्त होता है प्रतसंर्ग (प्रलय) से इन दोनों के बीच के विशाल कालखण्डो (भन्वन्तर) का राजवंशो का तथा महत्वशाली राजाओ का विवरण ही पुराणर का पुराणत्व है। कालिवंशीय राजाओ का वर्णन पुराणो में ही मिलता है जिसकी पुष्टि आधुनिक ऐतिहासिक उपकरणो से जैसे शिलालेख ताम्रलेख मुद्रा आदि से भी भलीभांति हो रही है।

पार्टिजर साहब के 'एनसिएण्ट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडेशन' के अनन्तर भारतीय तथा विदेशी विद्वानो का ध्यान पुराणो की ऐतिहासिक सामग्री की ओर आकृष्ट हुआ हैं और इस विषय से सम्बन्ध ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास के अंधकारपूर्ण काल के इतिहास को स्पष्ट करने में समर्थ हुए हैं। पुराण के द्वारा निर्दिष्ट कतिपय भूमिपति नई खोज के रूप मे प्रकाशित होने लगे है। पुराण का यह दोष नही है कि उसके द्वारा वर्णित किसी राजा के उपर नवीन खोज के आलोक ने अपना प्रकाश नही डाला हैं। नूतन गंवेषण के सर्वांगपूर्ण होने पर पुराण का प्रत्येक ऐतिहासिक विवरण प्रस्फुटित हो उठेगा यह एक तथ्य मात्र हैं। जिसका कारण है कि पौराणिक अनुश्रुति (ट्रेडेशन) को सुत्रो ने बड़ी सावधानी से सुरक्षित कर रखा हैं। सूत्र का काम राजाओ का गुणगान करना आवश्यक था। फलतः उन्होने राजवंशावलियो को विकृत होने से बचाया है। इन वंशावलियो में एक ही नाम वाले अनेक राजा हुए है। यथा नल नामक दो राजा हुए एक वीरसेन के पुत्र जो नैषध देश के राजा था। दूसरे इक्ष्वांकु वंश में उत्पन्न मरूक्त नामक दो राजा हुए करन्धन के पुत्र तथा अविक्षित के पुत्र इतनी स्पष्टता रखने वाले पुराण निश्चित रूप में ऐतिहासिक हैं इसमें कोई संदेह नही है।

प्राचीन इतिहास प्रस्तुत करने में भी पुराणो की अपनी एक विशिष्ट दिशा हैं वे कतिपय देशो के ही एकांगी वृतत के वर्णन करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नही मानते थें। बल्कि ब्रम्हाण्ड की सृष्टि से लेकर प्रलय तक महनीय घटनाओ के अंकन में निमग्न रहते है। राजबंशो में भी प्रधान का ही उल्लेख किया गया हैं। तथा उन्ही राजाओ का भी चरित्र चित्रित किया गया है। जो उपदेशप्रद होते है। तथा जिनका चरित्र किसी आदर्श को अग्रसर करने के लिए प्रस्तुत किया गया हैं। भागवत में उस बात का विशद वर्णन हैं कि जहां उन्ही राजाओ के चरित्र का वर्णन हैं जो स्वयं आदर्श चरित्र यशस्वी तथा सदाचार सम्पन्न थें। जायस्व म्रियस्व की कोटि मे आने वाले अन्य राजाओ कर वर्णन करने मे पुराण कार अपने परिश्रम तथा काब्य शक्ति को दुरपयोग करनी नही चाहता। विशेष ज्ञान तथा वैराग्य का वर्णन ही ग्रन्थ का प्रघान उद्देश्य है।

राजाओं के चरित्र का वर्णन नही परन्तु आज कल के खोजी विद्वान पेराणे के इस रहस्य को न समझ कर उनमे आपाततो दृश्यमान विरोघ तथा घटना वैषम्य के कारण उन्हे सर्वथा निमूल निराधार तथा अप्रामाणिक बतलाने की धृष्ट धोषणा करते है। ऐतिहासिक काल के भी कुछ राजवंशो का विवरण पुराणो मे वर्णित है।

मौर्य वंश के लिए विष्णुपुराण आन्ध्रवंश के लिए मत्स्य पुराण तथा गुप्त वंश के लिए वायु पुराण अत्यधिक प्रमाणिक सिद्ध हुए है। ऐसा पार्जिटर तथा स्मिथ जैसे–इतिहास कारो ने भी स्वीकार किया है।

इनके अन्त मे पुराणों ने भारत की दुर्दशा करने वाले कुछ विदेशी और बर्बर जातियो के राजवंशो का भी उल्लेख किया है–जैसे–
आभीर ,गर्दभ ,शक,यवन,तुषार,हूण आदि। इस लिए कुछ कालो के इतिहास अनावरण के लिए भी पुराणो का विशेष महत्व है।

पुराणों के अनुसार राष्ट्रधर्म और राजधर्म के लिए जिन नीतियों का संकलन किया गया है। उनमें राजाओं के लिए युद्ध से विमुख न होना प्रजाओ का परिपालन तथा ब्राहम्णो सुश्रषा –ये तीनो धर्म परम कल्याण कारी है। दुर्दशाग्रस्त असहाय और बृद्धो तथा विघवा स्त्रियो के योगक्षेम एवं जीविका का प्रबन्ध भी राजा को करना चाहिये। राजा को वर्णाश्रम की ब्यवस्था विशेष रूप से करनी चाहिये तथा अपने धर्म से भ्रष्ट हुए लोगो को पुनः अपने –2 धर्मो मे स्थापित कराना चाहिये ।

संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानाम परिपालनमं।
शुश्रषा ब्राहमणानां च राज्ञानिः श्रेयसं परम।।
कृपणानाथवृद्धानां विघवानां च पालनम्।
योगक्षेमं च वृन्तिचं तथैव परिकल्पयेत्।।
वर्णाश्रम व्यवस्थानं तथाकार्यम् विशेषतः।
स्वधर्म प्रत्युतान् राजा स्वधर्मेस्थापयेत् तथा।।

राजा के छिद्र को शत्रु न जान सके किन्तु वह शत्रु के छिद्र को जान ले वह कछुए की भांति अपने अंगो को छिपाये रखे और अपने छिद्र की रक्षा करे। अविश्वसनीय व्यक्ति का विश्वास न करे।क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मूल को भी काट डालता है। राजा को शिकार, मद्यपान तथा द्यत क्रिडा का परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि पूर्वकाल में इनके सेवन से बहुत से राजा नष्ट हो चुके हैं जिनकी गणना नहीं की जा सकती। राजा को कटु बचन बोलना और कठोर दण्ड देना ये दोनों कर्म नहीं करना चाहिए। राजा को परोक्ष में किसी की निंदा करना उचित नहीं है।

राजा को दो प्रकार के अर्थ दोषों से बचना चाहिए। एक अर्थ दोष दूसरा अर्थ सम्बन्धी दोष अपने दुर्ग के परकोटो का तथा मूल दुर्ग आदि की उपेक्षा और

उसकी अस्त व्यवस्तता ये अर्थ दोष कहे गये हैं। राजा को आदर सहित काम, क्रोध, मद्यपान, लोभ तथा हर्ष का प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए। राजा को इनपर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अनुचरों को जीतना चाहिए। इस प्रकार अनुचरों को जीतने के बाद पूरवासियों और देशवासियों को अपने अधिकार में करें। उन्हें जीतने के पश्चात बाहरी शत्रुओं को परास्त करें। तुल्य आभ्यन्तर और कृत्रिम भेद से वाह्य शत्रुओं को अनेक प्रकार का समझना चाहिए।

स्वामी, मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग, सेना, कोष तथा मित्र ये राज्य के सात अंग कहे गये हैं। राज्य तथा राज्यांगों का मूल होने के कारण वह प्रयत्न पूर्वक रक्षणीय है। फिर राजा के द्वारा राज्य के शेष छः अंगों की प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए। जो मूर्ख इन छः अंगों में से किसी एक के साथ द्रोह करता है उसे राजा को शीघ्र ही मार डालना चाहिए। राजा को कोमल वृत्त वाला नहीं होना चाहिए। क्योंकि ऐसा राजा पराश्रय का भागी होता है साथ ही अधिक कठोर भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि ऐसे शासक से लोग उद्विग्न हो जाते हैं। जो लोक द्वयोपेक्षी राजा समय पर मृदु तथा समय पर कठोर हो वह दोनो लोको मे विजयी हो जाता है। राजा को अपने अनुचरों के साथ परिहास नही करना चाहिये क्योंकि उस समय अनुचरण आन्नद मे निमग्न हुए राजा का अपमान कर बैठते है। राजा को सभी प्रकार के व्यसनो से दुर रहना चाहिए।राजा को सदा अपनी मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिए, क्योंकि प्रकट मन्त्रण वाले राजा के निश्चय ही सभी आपत्तियां प्राप्त होती है।

आकृत, संकेत, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र तथा मुख के विकारो से अन्तः स्थित मनोभावों का पता लगता है।

हे राजपुत्र जिस राजा के मन का इन उपर्युक्त उपायो द्वारा कुशल लोग भी पता न लगा सके, वसुंधरा उसके वश मे सदा बनी रहती है।राजा को कभी भी एक व्यक्ति से या एक ही साथ अनेक लोगो से मंत्रणा नही करना चाहिए। जिसकी परीक्षा न की गयी हो, ऐसे बिषम नौका पर राजा सवार न हो। राजा के जो भूमि विजेता शत्रु हों उन सबको सामादि उपयोग द्वारा वश मे लाना चाहिये। अपने राष्ट्र की रक्षा में तत्पर राजा का यह कर्तव्य हैं कि वह उपेक्षा के कारण प्रजाओ को दुर्बल न होने दे, जो अज्ञानवश असावधानी से अपने राष्ट्र को दुर्बल कर देता है।

वह शीघ्र ही भाई–बन्धुओ सहित राज्य एवं जीवन से च्युत हो जाता हैं। जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान होन पर कार्य करने में समर्थ होता है। उसी प्रकार पालन पोषण कर समृद्व किया हुआ राष्ट्र भी भविष्य में कार्यक्षम हो जाता हैं। जो अपने राष्ट्र के ऊपर अनुग्रह की दृष्टि रखता है वस्तुतः वही राज्य की रक्षा कर सता है। जो उत्पन्न हुई प्रजाओं की रक्षा कर सकता हैं। वह महान फल का भागी होता है।

राजा राष्ट्र की सुवर्ण अन्न और सुरक्षित पृथ्वी प्राप्त करता है। माता और पिता के समान अपने राष्ट्र की रक्षा में तत्पर रहने वाला नृपति विशेष प्रयत्न से नित्य प्रति स्वीकीय एवं परकीय दोनो ओर से होने वाली बाधाओं से अपने राष्ट्र की रक्षा करने अपने इन्द्रियों को संयत तथा गुप्त रखे और सर्वदा उनका प्रयोग गोपनीय रूप से करें। तभी उनसे उत्तम फल प्राप्त होता हैं।

जीवन के सभी दैव और पौरूष इन दोनों के अधिकार में रहते है। उन दोनो में दैव तो अचिन्त्य हैं। किन्तु पौरूष क्रिया विद्यमान रहती है। इस प्रकार पृथ्वी का पालन करने वाले राजा के प्रति प्रजा का परम अनुराग हो जाता हैं। प्रजा के अनुराग से राजा को लक्ष्मी प्राप्त होती हैं तथा लक्ष्मीवान राजा को ही परम यश की प्राप्ति होती है। आलसी और भाग्य पर निर्भर रहने वाले पुरूषों को अर्थ की प्राप्ति नही होती इसलिए सभी प्रयत्नो से पुरूषार्थ करने मे तत्पर रहना चाहिए। लक्ष्मी भाग्य पर भरोसा रखने वाले एवं आलसी पुरूषों को छोड़कर पुरूषार्थ करने वाले पुरूषों को यत्नपूर्वक ढूंढकर वरण करती है। इसीलिए सर्वदा पुरूषार्थशील होना चाहिए। पुराणों मे यह राष्ट्रभावना और भी मुखरित होती है, तथा राष्ट्र के एकत्व और देशभक्ति का सरस राग स्पष्टतः सुनायी पडता है। प्रत्येक पुराण भारतवर्ष को एक इकाई के रूप मे मानता है। तथा इसके विभिन्न प्रान्तो नदियों पर्वतों सरोवरों तीर्थो आश्रमो तथा नगरों का बड़ा ही विशद और यर्थाथ वर्णन प्रस्तुत करने में वह सर्वदा जागरूक है।

इसलिए प्रत्येक पुराण में ''भुवनकोष'' का विषय वर्ण्य विषयों में सम्मिलित किया गया है। भारतवर्ष की अखण्डता तथा देश प्रेम का यह राग विष्णुपुराण तथा भागवत के प्रख्यात पद्यो में बडी सुन्दरता के साथ अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। देवता लोग भारतवासियों की धन्यता के गीत गाते है। क्योंकि यह भारत देश स्वर्ग तथा मोक्ष पाने का सुखद पथ है, और देवता होने के बाद भी यहां जन्म लेकर मानव अपने परम कल्याण का सम्पादन करता है।

इस प्रकार पुराणो में भारतवर्ष की अखण्डता स्वदेशी वस्त्र का धारण तथा सप्त सिन्धुओं का मांगलिक स्मरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि धार्मिक विधि विधानों में भी राष्ट्रीय भावना का भव्य प्रसार था।

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य में पौरणिक युग का अविर्भाव एक नयी दिशा का सूचक रहा है, जो अनेक जातियों के समागम के कारण भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जो महान परिवर्तन आकर उपस्थित हुआ था वह समय और समाज की आवश्यकता थीं। पुराणों मे हम धर्म, कर्म, साधना, अराधना और रीति–रिवाजों की दृष्टि से वेदों की अपेक्षा सर्वथा बदली हुयी नयी परिस्थितियों को पनपता देखते है।निष्कर्ष यह है कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति के स्वरुप को यथार्थतः जानने के लिए पुराण का अनुशीलन नितान्त अपेक्षित है। धार्मिक सामाजिक राजनैतिक तथा भौगोलिक आदि अनेक दृष्टियों से पुराण का विशिष्ट महत्व है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' – संस्कृत साहित्य का इतिहास चौखम्भा भारती एकादमी, वाराणसी संस्करण–2012

2. डा० राधावल्लभ त्रिपाठी – संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास विश्वविद्यालय प्रकाशन ,वाराणसी संस्करण –2007 ई०
3. आचार्य बलदेव उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का इतिहास शारदा निकेतन, वाराणसी संस्करण–2001